काशी शास्त्रार्थ का सत्य

लेखक

आचार्य श्रीलालबिहारीजी मिश्र

श्रीहरिः

प्रकाशकीय

आर्यसमाजी बंधु सैकड़ों वर्षों से सनातनियों की पवित्र सनातन मान्यताओं के विरुद्ध सत्य से परे अपनी गप्पों की ढोल पीटते आ रहे हैं। लगभग ३२ वर्ष पूर्व गुरुवर्य पंडितराज आचार्य श्रीलालबिहारीजी मिश्र (अध्यक्ष, श्रीकाशीविद्वत्परिषद्) ने समाजी बंधुओं की शंकाओं का समाधान कर दिया था, फिर भी स्वभाववश आर्यसमाजी आज भी कुतर्कों द्वारा जनता को भ्रमित करने से बाज नहीं आ रहे हैं।

अतः सनातनियों के आग्रह पर गुरुदेव ने इनके "ढोल की पोल" खोलकर रख दी है। समाजी बंधुओं से आग्रह है कि दुराग्रह को त्यागकर इस विषय पर गंभीर चिंतन उपस्थित करें, जिससे यथार्थ का दिव्य रूप प्रतिपादित हो।

मकरसंक्रांति, २०५८ वै.
१४ जनवरी, २००२ ई.

बटुकप्रसाद शर्मा शास्त्री

प्रथम संस्करण १०००

मूल्य–दश रुपये मात्र

प्रकाशक
बटुकप्रसाद शर्मा शास्त्री
महामंत्री,
श्रीकाशीविद्वत्परिषद्

प्राप्तिस्थल
१०।१५, ब्रह्मनाल,
वाराणसी।

मुद्रक
कुसुम ऑफसेट
कतुआपुरा, वाराणसी।

काशी-शास्त्रार्थ का सत्य

आ. लालबिहारी मिश्र

आर्य समाज सैकड़ों वर्षों से बहुत-से असत्यों का प्रचार करता आ रहा है। इनमें एक असत्य यह है कि–स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'मूर्तिपूजा वेद-विरुद्ध है' इस विषय पर शास्त्रार्थ कर काशी में सब पंडितों को अकेले परास्त किया था। १९७० ई. में इस असत्य-प्रचार में एक असत्य और बढ़ा दिया गया। कहा गया कि–स्वा. दयानंद सरस्वती ने जो काशी के विद्वानों को हराया था और उनपर विजय प्राप्त की थी, उसी शास्त्रार्थ की विजय-शताब्दी १९७० ई. में मनायी गयी। अब सौ वर्ष पश्चात् भी कोई वेद में मूर्ति-पूजा सिद्ध न कर सका। उनके अखवार के शब्दों में आप पढ़ें–

आर्य प्रतिनिधि सभा, उ.प्र. के मुखपत्र आर्यमित्र (२१/१/१९७०) के मुखपृष्ठ पर छपा है–

"महर्षि दयानंद सरस्वती ने १८६९ में काशी के उच्चविद्वानों से अकेले मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध है, इस विषय पर शास्त्रार्थ करके सब पंडितों को परास्त किया था इसी शास्त्रार्थ की यह शताब्दी मनाई गई थी। अब सौ वर्ष पश्चात् भी कोई वेदों में मूर्त्ति पूजा सिद्ध न कर सका।"

यह प्रचार असत्य कैसे?

(१)

पहली बात यह है कि १८६९ वाले काशी-शास्त्रार्थ के एक वर्षों पहले ही मुरादाबाद के पंडित श्रीज्वालाप्रसाद मिश्र ने स्वा. दयानंदजी के इस प्रश्न का उत्तर दे दिया था कि वेदों में मूर्ति-पूजा है। पं. श्रीज्वालाप्रसाद मिश्र ने स्वामीजी की पुस्तक 'सत्यार्थ-प्रकाश' के खंडन में 'दयानन्द तिमिर-भास्कर' नामक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक में पृष्ठ ३५० से ४०८ तक विस्तार से सभी वेदों में मूर्ति-पूजा सिद्ध कर दी गयी है। सभी का उद्धरण देना इस लघु-कलेवर लेख में संभव नहीं है। जिज्ञासु-जन वहीं देखें। यहाँ सुगम होने के नाते शुक्ल-यजुर्वेद में भगवान् सूर्य की पुरुषाकार रूप में मूर्ति बनाकर जो पूजा दिखायी गयी है, इसका उल्लेख किया जा रहा है–

चयन-याग का प्रकरण है। शुक्ल यजुर्वेद के ग्यारहवें अध्याय में 'उखा-संभरण', बारहवें अध्याय में 'उखा-धारण' और तेरहवें अध्याय में 'प्रथम चित्युपधान' है। उसी प्रसंग में भगवान् की सूर्य की पुरुषाकार मूर्ति बनाकर पूजा की जाती है। सूर्य का मंडल आकाश में पूरब से उदित होकर पश्चिम की ओर जाता है। इन तथ्यों को वेद ने मूर्त-रूप दिया है–

कुश-स्तंब पर कमल का पत्ता रख दिया जाता है। यह पत्ता आकाश का प्रतीक है। इसी को यजुर्वेद में पुष्कर-पत्र का उपधान कहा गया है–**पुष्करपर्णमुपदधाति स्तम्बे** (कात्यायन श्रौतसूत्र, १७/४/१)। इस कमल के पत्ते पर सोने का गोल पत्तर रखा जाता है–यह सूर्य के मंडल का प्रतीक

है। इस पत्तर पर सोने से बनी हुई पुरुषाकार मूर्ति रखी जाती है। यह पुरुष भगवान् सूर्य का प्रतीक है। इसी तथ्य को श्रीज्वालाप्रसादजी ने लिखा है–

आदित्य-पुरुष का प्रतीक स्वर्ण-पुरुष है, इसी का नाम प्रतीकोपासना है। यह सुवर्ण का पुरुष-स्थापन शतपथ ब्रह्मण (७/४/१/१५) से चलता है। इस हिरण्य-पुरुष की प्राण-प्रतिष्ठा भी होती है और शक्ति के प्रादुर्भाव के लिए इस प्राण में वीर्याधान भी किया जाता है (शतपथ ब्राह्मण, ७/४/२२-२४)। इस तरह इंद्र आदि अन्य देवताओं की भी मूर्ति की पूजा होती है। देवताओं के मंदिर भी बनते थे, जिनको वेद ने **देवतायतन** कहा है। पं. श्रीज्वालाप्रसाद मिश्र ने इस प्रकार लिखा है–"अब भी जिस मूर्ति की प्रतिष्ठा अच्छे प्रकार हो, उसमें चमत्कार होता है और लोगों को इष्ट-प्राप्ति भी होती है। उनके चमत्कार का स्वरूप सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण में लिखा है–

यदा देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति स्विद्यन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्ति तदा प्रायश्चित्तं भवतीदं विष्णुर्विचक्रम इति स्थालीपाकꣳ हुत्वा पश्चभिराहुतिभिरभिजुहोति विष्णवे स्वाहा सर्वभूताधिपतये स्वाहा चक्रपाणये स्वाहेश्वराय स्वाहा सर्वपापशमनाय स्वाहा... आदि।

इस तरह पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र ने काशी-शास्त्रार्थ के बहुत पहले ही वेदों में मूर्ति-पूजा दिखा दी है।

ब्राह्मण-भाग को भी वेद सिद्ध किया है, जिसे २६२ पृष्ठ पर देखा जा सकता है।

इस तरह काशी-शास्त्रार्थ के पहले जब वेदों में मूर्ति-पूजा दिखा दी गयी है तब आर्य प्रतिनिधि सभा के मुखपत्र आर्यमित्र (२१/१/ ७०) के मुखपृष्ठ पर जो लिखा है–"अब सौ वर्ष पश्चात् भी कोई वेदों में मूर्तिपूजा सिद्ध न कर सका" यह झूठ है कि नहीं?

(२)

दूसरी बात यह है कि आर्यमित्र के उपर्युक्त उद्धरण के पहले 'स्वामी दयानंद-पंथियों की विज्ञप्ति का उत्तर' शीर्षक की एक विज्ञप्ति मैंने निकाली थी। उसमें भी लिखा था–मंत्र और ब्राह्मण भी वेद हैं और ब्राह्मणों में मूर्ति-पूजा विस्तार से लिखी है। इस तरह वेदों में मूर्तिपूजा १९७० में भी दिखला दी गयी है। फिर यह कहना कि ७० तक भी कोई वेदों में मूर्तिपूजा सिद्ध न कर सका, क्या असत्य है, या नहीं? इस विज्ञप्ति-पत्र को अंशरूप यहाँ उद्धृत किया जाता है–

॥ श्रीहरिः ॥

दयानन्दपंथियों की विज्ञप्ति का उत्तर

दयानन्दपंथियों ने एक विज्ञप्ति निकाली है, जिसका शीर्षक है–"स्वामी करपात्रीजी तथा अन्य पौराणिकों का चैलेंज स्वीकार है।"

यह शीर्षक अशुद्ध है। इसलिए कि स्वामीजी ने पहले

चैलेंज नहीं किया है, चैलेंज का प्रारंभ किया है–आर्यसमाज ने। स्वामीजी ने उस चैलेंज को स्वीकार-भर किया है जो अखबारों में निकल चुका है।

दयानन्दपंथी-विज्ञप्ति में लिखा है कि 'सनातन धर्म अवैदिक है तथा शैव, वैष्णव आदि में एक सिद्धांत नहीं हैं।'

जबकि सनातनधर्म समग्र वेद (११३१ शाखाओं) को एवं वेदानुसारी पुराण आदि को प्रमाण मानता है। वेद को प्रमाण मानने में शैव, वैष्णव आदि सभी एकमत हैं। यही कारण है कि शैव, वैष्णव आदि संप्रदायों में सहस्रों ऐसे वैदिक विद्यमान हैं जिन्हें समग्र वेद सस्वर कंठस्थ हैं। जब कि दयानन्द-पंथियों में एक को भी पारंपरिक सस्वर वेद कंठ नहीं है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने महाभाष्य की प्रामाणिकता स्वीकार की है और महाभाष्य ने वेद की ११३१ शाखाएँ मानी हैं।

अतः उनकी विज्ञप्ति की अगली पंक्ति कि "आर्यसमाजी... यह चाहते हैं कि चारों वेदों को पौराणिक भाई मानें तथा सत्य सनातनधर्मी बनें" उन्हीं पर लागू हो जाती है। सनातनधर्मी चाहते हैं कि 'दयानन्दपंथी भाई भी ११२७ शाखाओं को बिना काटे चारों वेदों को मानें तथा सच्चा वैदिक बनें।

फिर मूर्तिपूजा आदि का सांगोपांग विवरण, जो वेद में उपलब्ध है, उन्हें साफ-साफ दीख जायगा। नहीं तो इस पंथ के लोग जितना वेद मानते हैं उसके अनुसार वे अपने सब

सिद्धांत को पूर्णतया वैदिक सिद्ध नहीं कर सकते। जैसे-

(क) सृष्टि संवत् १,३७,२९,४९,०६९ प्रायः दो अरब वर्ष पुराना है, ऐसा आपने इस विज्ञप्ति में लिखा है।

क्या आप अपने माने वेद से अपने इस लेख की प्रत्येक अंक की वैदिकता सिद्ध कर सकते हैं?

(ख) सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास में आपके माने हुए वेद का एक भी मंत्र नहीं है। ऐसी परिस्थिति में समस्त द्वितीय समुल्लास अवैदिक ठहरता है।

(ग) सारे सत्यार्थ प्रकाश में अस्सी के नीचे वेद मंत्र आये हैं। इस तरह सत्यार्थ प्रकाश का अधिकांश भाग अवैदिक ही ठहर जाता है।

(घ) स्वामी दयानन्दजी के नाम के आगे 'स्वामी' और पीछे 'सरस्वती' पद लगे हैं। इनकी वैदिकता भी आपको अपने माने वेद से सिद्ध करनी होगी।

(ङ) संस्कार विधि के समस्त विधानों की वैदिकता भी वैसे ही सिद्ध करनी होगी।

उनकी विज्ञप्ति में आगे सनातनधर्मियों को 'पत्थर की मूर्तियों के सुलाने-जगानेवाला मूर्तिपूजक' कहा गया है और प्रश्न किया है कि 'क्या वस्तुतः पत्थर की मूर्ति खा सकती है? सो सकती है? तथा जग सकती है?' आदि-आदि।

आपने सनातनधर्मियों को जो पत्थर की मूर्तियों का पूजक माना है, वह स्वामी दयानन्दजी के लेख के विरुद्ध है-

"जिनको तुम बुतपरस्त समझते हो वे भी उन मूर्तियों को ईश्वर नहीं समझते हैं। किंतु उनके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं" (सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास, पृष्ठ ७३७)।

लिखिए, आपका लेख सही है या स्वामी दयानन्द सरस्वती का?

आपके लेख से व्यक्त होता है कि आप मूर्तियों के खिलाने-सोने आदि को ही मूर्तिपूजा मानते हैं और कैथोलिक, बौद्धादि अपने इष्टदेवों की मूर्तियों के संबंध में जो कुछ करते हैं, उन्हें मूर्तिपूजा नहीं मानते।

परंतु महोदय! आपकी यह परिभाषा भी स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के विरुद्ध है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लिखा है–"किसी जड पदार्थ के सामने सिर झुकाना या उसकी पूजा करना सब मूर्तिपूजा है।" (सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास, पृष्ठ ४९०)

बताइये, आप सही हैं अथवा आपके स्वामी दयानन्द सरस्वती?

आगे विज्ञप्ति में ब्राह्मण, उपनिषद्, आरण्यक को मानवकृत मानते हुए उन्हें वेद मानने के कारण सनातन-धर्मियों के लिए लिखा है कि "पत्थरों को खाना खिलाते, जगाते-सुलाते इन भूले भाइयों की पत्थर बुद्धि हो गई... इसपर हमें रोना आता है और यह लोकोक्ति चरितार्थ होती है 'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः'।"

ब्राह्मणभाग के वेदत्व पर श्रीशिवप्रसादजी सितारेहिंद का

स्वामी दयानन्द सरस्वती के साथ काशी में शास्त्रार्थ चल चुका है। 'थीबो' साहब ने श्रीशिवप्रसादजी के पक्ष में अपनी राय दी थी।

राजा साहब ने दूसरे निवेदन में पृष्ठ ४, पंक्ति ६ में लिखा है–"फिरंगिस्तान के विद्वत्जन मंडली भूषण काशीराज स्थापित पाठशाला अध्यक्ष डॉक्टर थीबन साहब बहादुर को दिखलाया वे बहुत अचरज में आए और कहने लगे कि हम तो स्वामीजी महाराज को बहुत पंडित जानते थे, अब उनके मनुष्य होने में संदेह होता है।"

राजा साहब ने अपने ग्रंथ पर थीबो साहब की एक चिट्ठी भी छापी है–

He (Dayanand Saraswati) mention that the Sanhitas are "ईश्वरोक्त", while the Brahmans and Upanishadas are merley "जीवोक्त" but how does he prove this assertion? (For as it stands it cannot be called enything but a mere assertion.) The assertion of Sanhitas being "स्वतः प्रमाण" while the Brahmanas and Upanishadas are merley "परतः प्रमाण" and like wise not be admited before it is supported by argument stronger than those which Dayanand Saraswati has brought forward up to the present.

Raja Sivprasad is right to ask "why should not both be "स्वतः प्रमाण" if one is so?" or again "why should not both be "परतः प्रमाण" if one is so?"

जो बुद्धि थीवो जैसे तटस्थ व्यक्ति की स्पष्ट बात को भी नहीं समझ पाती, ११३१ शाखाओं में से ११२७ शाखाओं की की-गयी हत्या को हत्या नहीं समझ सकती क्या वह बुद्धि पत्थर की नहीं है? और विनाशकाल में विपरीत नहीं बन गयी है?

जीविका का प्रश्न तो वस्तुतः दयानन्दपंथियों के समक्ष उपस्थित होता है। यदि वे संघर्ष का वातावरण प्रस्तुत न करते रहें तो उनकी जीविका ही संदिग्ध हो जाय। धीरे-धीरे यह संघर्ष उनका स्वभाव बन जाता है। महात्मा गांधी ने लिखा है–

"आर्यसमाजी संकुचित हृदय और झगड़ालू स्वभाव होने के कारण अन्य मतावलंबियों के साथ और जब उन्हें दूसरा न मिले तो आपस में झगड़ा करते हैं।" (यंग इंडिया, अप्रैल, सन् १९४७)

२० नवंबर १९६९ को सनातनियों की ओर से दुर्गाकुंड पर विराट सभा हुई थी। वहाँ दयानन्दपंथियों की प्रस्तावित चुनौती की स्वीकृति दी जा चुकी थी। पर वहाँ कोई आया नहीं। सनातनियों पर झगड़े का आरोप मिथ्या है।

विज्ञप्ति में प्रेस लाइन नहीं छपी है।

इस विज्ञप्ति के अंत में शास्त्रार्थ की चुनौती दी गयी है, सनातनधर्म को वह स्वीकार है। प्रकाशित समाचार के अनुसार दयानन्दपंथी दिग्विजय के लिए प्रयाण कर चुके हैं, वे आवें श्रीहरिश्चंद्र डिग्री कॉलेज में शास्त्रार्थ के द्वारा उनका स्वागत किया जायगा। शास्त्रार्थ संस्कृत में हो और न्यायसूत्र

के नियमों के अनुसार हो। लिखित शास्त्रार्थ हो और उसे जनता को सुना दिया जाय। यह सर्वथा अपेक्षित है।

निवेदक–
लालबिहारी मिश्र
विद्वत् परिषद, काशी
(गोयनका संस्कृत महाविद्यालय)

यह विज्ञप्ति क्यों निकाली गयी, इसका विवरण देना आवश्यक है। इसका निर्देश उपर्युक्त आर्य प्रतिनिधि सभा के मुखपत्र के उपर्युक्त उद्धरण में आ गया है। १९७० ई. में, अखबारों में निकला कि आर्य समाज के शास्त्रार्थ महारथी दिल्ली से सभी दिशाओं में भेजे जायेंगे। ये लोग दिग्विजय करते हुए अंत में काशी में इकट्ठे होंगे। यहाँ के विद्वानों से मूर्तिपूजा वेद-विरुद्ध है, इस विषय पर शास्त्रार्थ कर यहाँ के पंडितों को उसी तरह हरायेंगे, जैसे सौ वर्ष पहले स्वा. दयानंद सरस्वती ने इस विषय पर शास्त्रार्थ कर यहाँ के पंडितों को हराया था। स्वामीजी की विजय को उजागर करने के लिए ही यह शास्त्रार्थ रखा गया है।

जिन दिनों अखबारों में काशी-शास्त्रार्थ की यह चुनौती छपी थी, उन दिनों स्वामी करपात्रीजी महाराज काशी में ही थे। उन्होंने अखबारों में निकाल दिया कि काशी शास्त्रार्थ की यह चुनौती स्वीकार है। सुविधा के लिए हरिश्चंद्र महाविद्यालय को शास्त्रार्थ-स्थल निर्धारित किया गया। वहाँ लोग शास्त्रार्थ करने के लिए आये, किंतु उधर से कोई शास्त्रार्थ के लिए आया ही नहीं। कुछ दिनों बाद उनकी ओर

से एक विज्ञप्ति पत्र भेजा गया, जिसका नाम है– "करपात्रीजी तथा अन्य पौराणिकों का चैलेंज स्वीकार है"। इसी विज्ञप्ति का उत्तर देने का कार्य मुझे सौंपा गया। जिसका शीर्षक है–"दयानन्दपंथियों की विज्ञप्ति का उत्तर"। इसे यहाँ ज्यों-का-त्यों प्रकाशित किया जा रहा है। साथ ही कुछ श्लोक-बद्ध विचार भेजे गये, जिनमें शास्त्रार्थ के प्रकार पर विचार व्यक्त किया गया है।

उपर्युक्त आर्यमित्र के उद्धरण में इस विज्ञप्ति के किसी विषय पर कोई चर्चा नहीं की गयी। उलटे उसी असत्य को दोहराया गया कि "अब सौ वर्ष पश्चात् भी कोई वेदों में मूर्तिपूजा सिद्ध न कर सका"।

सच तो यह है कि इसी विज्ञप्ति में दिखला दिया गया था कि मंत्र की तरह ब्राह्मण भाग भी वेद है, इस विषय पर काशी के प्रमुख नागरिक श्रीशिवप्रसाद सितारेहिंद से स्वा. दयानंद सरस्वती का लिखित शास्त्रार्थ चल चुका है। जिसमें भी स्वा. दयानंद सरस्वती की हार हुई थी। इस संबंध में 'थीबो' साहब की चिट्ठी छपी है, जिसमें 'थीबो' साहब ने राजा साहब के इस विचार का समर्थन किया है कि जिस पद्धति से मंत्र को वेद माना जाता है, उसी प्रकार ब्राह्मण को भी वेद कहना ही चाहिए।

'थीबो' साहब का यह कथन कितना सरल और सच है इसपर आप भी विचार कर लें। किसी ने एक संतरा उठाया, उसका कुछ हिस्सा खाकर कहा यह संतरा है। किंतु बचे हुए हिस्से को संतरा मानने से मुकर गया। अब आप ही सोचें, जिस पद्धति से संतरे के एक हिस्से को संतरा माना गया,

उसी पद्धति से संतरे के दूसरे भाग को संतरा ही कहना चाहिए या नहीं? उसे संतरा न कहना गलत है या नहीं?

इस तरह ब्राह्मण भाग भी वेद हैं, तो वहाँ मूर्तिपूजा है ही। उदाहरण दिया जा चुका है। एक नया उदाहरण और दे दिया जाता है। अथर्ववेद की श्रीरामपूर्वतापिनीयोपनिषद् के सप्तम खंड में पूजा के लिए यंत्र बनाया गया है, जिसका विस्तार के वहाँ वर्णन किया गया है। अष्टम खंड में पूजा-यंत्र के अगले अंगों का वर्णन है। नवम खंड में शेष भाग का वर्णन, राम के माला-मंत्र का स्वरूप और माहात्म्य बताये गये हैं। दशम खंड में पूजा के प्रकार का विस्तार से उल्लेख हुआ है। भूतशुद्धि के बाद मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा को उपलक्षण से कहा गया है। इस तरह १९७० में भी मूर्तिपूजा दिखायी गयी है। फिर यह कहना कि–अब सौ वर्ष पश्चात् भी कोई वेदों में मूर्तिपूजा सिद्ध न कर सका–झूटी बात है। सभी ब्राह्मणों में पग-पग पर मूर्तिपूजा है।

इस तरह आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले भी और १९७० में भी मूर्ति-पूजा दिखायी गयी है।

हमारी उस विज्ञप्ति में बहुत से प्रश्न उठाये गये हैं, जिनमें से किसी का आजतक कोई उत्तर न दिया गया है।

इस तरह १९७० में भी वेद में मूर्तिपूजा दिखायी गयी है फिर यह कहना कि "१९७० में भी किसी ने मूर्तिपूजा नहीं दिखायी" यह असत्य है या नहीं?

आर्य प्रतिनिधि सभा के मुखपत्र आर्यमित्र (२१/१/१९७०) का उद्धरण ऊपर दिया जा चुका है। अब रह गयी

बात स्वा. दयानन्द सरस्वती के काशी शास्त्रार्थ की। उसके उत्तर में फिर एक विज्ञप्ति और प्रकाशित की गयी, जिसे उद्धृत किया जा रहा है, इसका भी कोई उत्तर नहीं दिया गया–

॥ श्रीहरिः ॥

काशी शास्त्रार्थ

स्वामी दयानन्दसरस्वती की करारी हार

सौ वर्ष पश्चात् भी दयानन्दपंथी निरुत्तर

आर्य प्रतिनिधि सभा, उ. प्र. के मुखपत्र 'आर्यमित्र' (२१/१/७०) के मुखपृष्ठ पर छपा है–"म. दयानन्द सरस्वती ने १८६९ में काशी के उच्चविद्वानों से अकेले मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है, इस विषय पर शास्त्रार्थ करके सब पंडितों को परास्त किया था... इसी शास्त्रार्थ की यह शताब्दी मनाई गई थी। अब सौ वर्ष पश्चात् भी कोई वेदों में मूर्तिपूजा सिद्ध न कर सका।"

आर्य समाज किस तरह मिथ्या प्रचार किया करता है इसका यह ताजा उदाहरण है। झूठी बातें गढ़कर जनता को धोखे में डालना अच्छा काम नहीं है।

काशी के राजा श्रीशिवप्रसाद सितारेहिंद से स्वामी दयानन्द सरस्वती की हार हुई थी। इस संबंध का 'थीबो' साहब का लेख आज भी विद्यमान है (जिसकी चर्चा मैंने

पहली टिप्पणी में कर दी है)। इसी तरह काशी के दूसरे विद्वान् आधुनिक हिंदी के जनक भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र ने "दूषण-मालिका" लिखकर स्वामी दयानन्द सरस्वती से लेखबद्ध शास्त्रार्थ की माँग की थी जिसका समुचित उत्तर वे न दे सके और यह पुस्तक आज भी चुनौती बनी बैठी है।

इस तरह काशी के इन दो विद्वानों को ही जब दयानन्द सरस्वती न जीत पाये तब पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, नव्य न्याय, नव्य व्याकरण आदि के मूर्तिमान् रूप बालशास्त्री आदि जैसे गुरुजनों से स्वामी दयानन्द सरस्वती क्या टक्कर लेते। स्वामीजी तो इन विषयों का क-ख भी नहीं जानते थे। यही कारण है कि काशी शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्दजी की पग-पग पर हार होती रही।

प्रसिद्ध नैयायिक पं. ताराचरणजी के तर्क ने ऐसा आश्चर्यजनक कार्य किया कि उसके चक्कर में पड़कर स्वामीजी अपनी ही मान्यताओं को एक-दो प्रश्नों के उत्तर में अपनी ही बात से काट बैठे। ऐसी विकट हार कम देखने को मिलती है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रश्न था–"मूर्तिपूजा वेद में कहाँ लिखी है?" पं. ताराचरणजी का तर्क था–"केवल वेद प्रमाण है, और कुछ (स्मृति आदि) प्रमाण नहीं; इसमें क्या प्रमाण?" बस दो ही उत्तर-प्रत्युत्तर के बाद स्वामीजी को कह देना पड़ा–"महाभारत और मनुस्मृति प्रमाण हैं"। ताराचरणजी ने पूछा–"महाभारत या मनुस्मृति का वह कौन-सा वचन है जो केवल वेद को ही प्रमाण मानने का आदेश देता है, अन्य को नहीं?"। स्वामी दयानन्दजी कोई प्रमाण प्रस्तुत न कर

सके, बिल्कुल निरुत्तर हो गये। स्वामीजी की यह करारी हार थी। यदि स्वामीजी वेद का या मनु का कोई वचन प्रस्तुत कर देते, जिससे यह सिद्ध होता कि केवल वेद ही प्रमाण है, उसके अतिरिक्त और कुछ प्रमाण नहीं; तब ताराचरणजी के लिए आवश्यक हो जाता कि मूर्तिपूजा में वेद का प्रमाण प्रस्तुत करें। परंतु स्वामीजी कोई वचन प्रस्तुत न कर सके। अब सौ वर्ष पश्चात् भी पं. ताराचरणजी के उक्त प्रश्न का उत्तर उनके अनुयायी भी न दे सके। ताराचरणजी के तर्क ने यहाँ मनु तथा आगे चलकर कात्यायन, महाभारत आदि का प्रामाण्य स्वयं दयानन्द सरस्वती से कहला कर स्पष्ट कर दिया कि वेद की प्रामाणिकता के लिए जब मनुस्मृति और महाभारत को स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रमाण मान बैठे तो उन प्रमाणों से मूर्तिपूजा तो सिद्ध ही है। इस तरह मूर्तिपूजा का विवाद ही समाप्त हो गया।

शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह के अवसर पर दयानन्द-पंथियों की ओर से एक विज्ञप्ति निकाली गयी थी, जिसका उत्तर "दयानन्दपंथियों की विज्ञप्ति का उत्तर"-शीर्षक विज्ञप्ति में दिया गया था। आजतक उसका कोई उत्तर नहीं हुआ। दूसरे पत्र में संस्कृत पद्यों में शास्त्रार्थ की प्रक्रिया के संबंध में उल्लेख था। उसका उत्तर आजतक दयानन्दपंथी नहीं दे सके। यदि उक्त विषयों के उत्तर देने का प्रयास दयानन्दपंथी आज भी करें तो लिखित शास्त्रार्थ आगे बढ़े। उनकी चुप्पी उनकी हार बताती है। वेद में मूर्ति-पूजा का वर्णन है।

लालबिहारी मिश्र
विद्वत्परिषद्, काशी
(गोयनका संस्कृत महाविद्यालय)

आप भी विचारिये

एक ग्रंथकार ने लिखा है कि सन् १८५७ में भारत जब स्वतंत्रता के लिए उपनिवेशवादियों से टकराया तो उपनिवेशवादियों ने विचारा कि इनमें पारस्परिक भेद डाल दिया जाय, ताकि ये स्वतंत्रता की बात भूलकर आपसी झगड़ों में उलझ जाँय। ब्रह्म समाज की स्थापना इसी उद्देश्य से की गयी थी। प्रसिद्ध विद्वान् 'मैक्स मूलर' ने अपनी आत्मकथा के द्वितीय भाग में ब्रह्म समाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय तथा केशवचंद्र सेन की चर्चा करते हुए लिखा है कि "ये लोग समझते थे कि उनका धर्म ईसाई धर्म की बराबरी नहीं कर सकते। वह ऐसा समय था, जब ईसाई धर्म अपना दृढ़ कवच बाँधकर भारत में उतर पड़ता और इसमें सबसे बड़ी विजय प्राप्त करता। श्रीराममोहन राय और उनके मित्र इसके लिए तैयार बैठे थे। किंतु खेद है कि उस समय ईसाई धर्म के प्रचारक भारत में न थे।" (ओल्ड लैंगसीन - II, पृ. सं. ७७)

"केशवचंद्र सेन तो अपने को ईसाई मानते ही थे, परंतु घोषित इस लिए नहीं करते थे कि हिंदू भड़क उठेंगे।"

जब ब्रह्म समाज से काम नहीं चला तो उपनिवेशवादियों ने श्रीदयानंदजी को प्रलोभित किया। ग्रंथकार ने तर्क दिया कि आखिर बड़े लाटसाहब केवल दयानंदजी की हर प्रकार से सुरक्षा और सुविधा क्यों करते थे। ग्रंथकार ने लिखा है कि बनारस में 'मंकी टेंपुल' पर शास्त्रार्थ करने जब दयानंदजी अकेले गए तो बड़े लाटसाहब ने बनारस के जिलाधिकारी से पूछा कि श्रीदयानंद की सुरक्षा का प्रबंध क्यों नहीं किया गया? स्वा. दयानंद ने अपने ग्रंथ सत्यार्थ

प्रकाश में हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, जैन तथा बौद्ध भाइयों का खंडन क्यों किया? ये वही लोग हैं, जो स्वतंत्रता की लड़ाई में कंधे से कंधा मिलाकर लड़े थे?

इस तरह ब्रह्म समाज की स्थापना भारत में परस्पर झगड़ा लगाने के लिए की गयी। यह भारत की भलाई के लिए नहीं बल्कि धार्मिक उपनिवेशवाद पैदा करने के लिए की गयी। उपनिवेशवादियों को जब ब्रह्म समाज से अपने स्वार्थ की पूर्ति होते नहीं दीख पड़ी तो श्रीदयानंदजी को प्रलोभित किया कि तुम सबका खंडन करो, हम लोग आपके नाम से विद्यालयों और भवनों की स्थापना करेंगे। स्वामीजी ने सत्यार्थ प्रकाश लिखकर पवित्र ग्रंथ गुरु-ग्रंथ-साहिब का खंडन किया, मुसलमान भाइयों के, जिन्हों ने कंधे से कंधा मिलाकर हमारी आजादी की लड़ाई में साथ दिया था, उनके पवित्र ग्रंथ कुरान का खंडन किया, उसी प्रकार प्रायः सभी धर्म-ग्रंथों का खंडन किया। सनातनियों, जैनों और बौद्धों की निंदा की।

मालूम पड़ता है कि इसीलिए महात्मा गांधी ने आर्य समाज के संबंध में अपनी निम्नलिखित सम्मति दी है–

"आर्य समाज के बाइबिल सत्यार्थ प्रकाश को मैंने दो बार पढ़ा। ऐसे महासुधारक (स्वा. दयानंद) की लिखी हुई इतनी निराशाजनक पुस्तक मैंने दूसरी नहीं पढ़ी।"

"आर्य समाजी संकुचित हृदय और झगड़ालू स्वभाव के होने के कारण अन्य मतावलंबियों के साथ, और जब उन्हें दूसरा कोई न मिले तो आपस में झगड़ा करते हैं।"

(यंग इंडिया, अप्रैल, सन् १९२४)

उच्च न्यायाधीश का निर्णय

[...दयानंद की खास पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में व्यभिचार की तालीम मौजूद है। दयानंद के नियम ऐसे विषय हैं कि वे हिंदू धर्म तथा दूसरे मजहबों की निंदा करते हैं और इस किताब (सत्यार्थ प्रकाश) के चंद हिस्से खुद भी निहायत फड्स (अश्लील) हैं। (मौलवी अंजाम अली खाँ साहेब, मैजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल, अदालत पेशावर, ता. ८ दिसंबर १८९१)]

उपर्युक्त पंक्तियों से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि जिस व्यक्ति ने भारतीय समाज में अनाचार और आपस में एक दूसरे को लड़ने के लिए उकसाया है, उस व्यक्ति के नाम से सारे नगरों में विद्यालय एवं मंदिर के नाम पर भवन तैयार हो गए। इसके आद अब यह देखना है कि भारत में उन व्यक्तियों के लिए क्या सुविधा प्रदान की गयी, जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए लाठी, जूते सहे परंतु इसके बदले में उनसे मैत्री बनाए रखा। महात्मा गांधी के इस आदर्श को देखकर महान् वैज्ञानिक आइंस्टीन ने कहा था कि आगे की पीढ़ी यह विश्वास करने में हिचकेगी कि विश्व में कोई ऐसा व्यक्ति हुआ जो हाड़-मांस के पुतले के रूप में चलता था। दूसरा नाम पं. जवाहर लाल नेहरू का लिया जाता है, जिनके विषय में आइंस्टीन ने कहा था–वह भारत के ही प्रधान मंत्री नहीं वल्कि मानवता के भविष्य के प्रधान मंत्री हैं। तीसरा नाम श्रीमती इंदिरा गांधी का लिया जाता है। जिनको विश्व बीसवीं सदी की सबसे प्रथम महिला माना है। किंतु उपनिवेशवाद ने भारत के एक व्यक्ति स्वा. दयानन्द सरस्वती

को सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कीं उसी उपनिवेशवाद ने इंदिरा गांधी की सरकार को बदनाम कराओ और फिर गिरा दो–इस हथकंडे से काम लिया। इतिहास बताता है कि प्रायः यह बदनामी देश-भर में करायी जाती है किंतु इंदिराजी के लिए विश्व-भर में करायी गयी। इस रहस्य का उद्‌घाटन सर्वप्रथम शिकागो के 'डेली न्यूज' ने अपने समाचार पत्र से किया था। (संडे ऑब्जर्बर, ४ मई १९९१, पृ. २१)

समाचार पत्र के शब्दों मे विवरण यह है–'सी.आई.ए. के प्रचार कार्य में सैकड़ों विदेशी पत्रकार'। शिकागो, २४ अप्रैल। शिकागो के एक डेली न्यूज ने एक कॉपी-राइट समाचार पत्र में गत शुक्रवार को बताया है कि अमेरिकी सीनेट को बताया गया है कि अमेरिकी केंद्रिय गुप्तचर अभिकरण ने विदेशों में सैंकड़ों पत्रकारों की सेवा प्राप्त की है। तथा कल्पित 'काले प्रचार' से विश्व जनमत को प्रभावित करने के कार्यक्रम के अंतर्गत इन विदेशी पत्रकारों से सहायता ली जाती है।

ये पत्रकार, जो सब-के-सब विदेशी हैं, लगभग २०० समाचार पत्रों, ३ संवाद समितियों, २० रेडियों और टेलीवीजन स्टेशनों तथा २० पुस्तक प्रकाशकों के माध्यम से सी.आई.ए. के प्रचार कार्य में सहायक होते हैं।

इन समाचार पत्रों में यह कहा गया है कि अदालत ने इंदिराजी को भ्रष्ट तरीके अपनाये जाने के लिए दोषी पाया। ये अखवार अदालत के निर्णय को कितना विकृत करके लिखने लगे, इसे 'नवभारत टाइम्स' के शब्दों में देखें–

इन समाचार पत्रों में कहा गया है कि इंदिराजी को भ्रष्ट

तरीके अपनाने के लिए दोषी पाया है। अतः किसी निर्वाचित पद पर रहने से बहिष्कृत किया है। फिर भी इंदिराजी ने अपना पद न छोड़ने का निर्णय किया है।

(वाशिंगटन, नवभारत टाइम्स, १४ जून)

अदालत की सच्चाई आप कलकत्ता उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्रीसुरजीतप्रसाद लाहिरी के वक्तव्य में पढ़ें–उन्होंने कहा था, इलाहाबाद मुख्य न्यायालय के फैसले में राय बरेली में श्रीमती गांधी का चुनाव अवैध करार देने के साथ ही अदालत ने विना शर्त स्थगन आदेश दिया है। ऐसा आदेश जारी होने पर फैसले के पूर्व जो स्थिति है, वही बनी रहती है।

स्थगन आदेश के बावजूद श्रीमती गांधी से इस्तीफे की माँग करना उक्त आदेश और उसके कानूनी पहलुओं की अवहेलना करना है।

(नवभारत टाइम्स, नयी दिल्ली, १५ जून)

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि विदेशी शासन ने ब्रह्म समाज आदि संस्थाओं को तथा किसी व्यक्ति-विशेष को इतना महत्त्व दिया है तथा दूसरी ओर भारत के विशिष्ट व्यक्तियों की इतनी दुर्गती की, जो अवर्णनीय है। किसी के यश को मिटाकर कलंकित करना वैसा ही तोहफा है जैसा कि स्वराज के लिए मर मिटने वाले श्री बहादुर शाह जफ़र को उनके लड़कों का सिर काटकर उनको तोहफे के रूप में दिया गया।

दूसरे ग्रंथकार के निम्न दृष्टांत पर भी विचार करें–

दृष्टांत

एक ऐसा व्यक्ति था, जो मांस, मदिरा आदि सभी चीजों को डटकर खाने में विश्वास करता था। इस अंश में वह कुंभकर्ण का प्रशंसक था। दूसरा आदर्श उसके लिए रावण था। रावण जिस तरह किसी की भी नारी को घर्षित करता था, इसी तरह वह भी ऐसा ही आचरण करता था। अतः मर्यादापुरुषोत्तम राम और उनकी जीवनी 'रामचरित मानस' का वह घोर शत्रु था। 'मानस' से उसे ज्यादा चिढ़ इस लिए थी कि 'मानस' घर-घर में घुसकर राम की प्रशंसा और रावण तथा कुंभकर्ण की निन्दा किया करता है। उसने 'मानस' को मिटाने के लिए माया का रास्ता अपनाया। वह बन गया 'मानस' का प्रेमी। कहा करता था कि 'मानस' से बढ़कर कोई ग्रंथ नहीं है। किंतु आज जो घर-घर में 'मानस' उपलब्ध है वह 'मानस' है ही नहीं। 'मानस' तो कुछ चौपाइयों को ही कहते हैं। दोहा, सोरठा, छंद आदि 'मानस' हैं ही नहीं। कुछ चौपाइयाँ भी 'मानस' नहीं हैं। इसी तरह इस 'मानस' की जितनी टीकाएँ हैं, सब अमान्य हैं। मैं जो अर्थ करता हूँ, वही 'मानस' का अर्थ है। जैसे–

'भूप सहस दस एकहि बारा।'

इस चौपाई में 'बारा' का अर्थ है–दही-बारा (दही-बड़ा)। जनकजी ने स्वयंवर की रचना की थी, यह देखने के लिए कि जो इस बहुत बड़े दही-बड़े को खा जायगा उसी से जानकी की शादी होगी। लेकिन वह 'बारा' इतना बड़ा था कि कोई उसे उठाकर खा नहीं पाया। कई लोग मिलकर उसे खाने दौड़े, पर वह बड़ा भी इतना बड़ा था कि हजारों के

उठाने पर भी उठता न था। फिर खाना तो दूर रहा।

'मानस' में प्रमाण है, उतना बड़ा दही-बड़ा बनाने के लिए कड़ाही भी बहुत यत्न कर बनायी गयी थी–

'जनम जनम मुनि जतन कराही।'

उस कड़ाही को आग पर चढ़ाने की नौबत ही नहीं आयी। क्यों कि मेघ ने तपाया तेल उसमें डाल दिया जिससे बड़ा पक गया–

'वारिद तप्त तैल जनु बरिसा।'

उस बड़े को रामचंद्र नामक बहुत खाने वाले पेटू युवक ने खा लिया, इससे जानकी का उससे विवाह हुआ।

लोगों ने पूछा–किंतु यह व्याख्या तो किसी भी टीकाकार में नहीं लिखी है।

उत्तर दिया गया, मैं किसी टीका को नहीं मानता। मैं जो अर्थ करूँ, वही सत्य है।

लोगों ने पूछा, भाई! किंतु प्रकरण छंद और दोहे से सिद्ध होता है कि धनुष तोड़ने से विवाह हुआ था–

'कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं।'

–यह छंद है।

दोहा यह है–

'संकर चापु जहाजु, सागर रघुबर बाहुबल।'

(रामचरित मानस, बालकांड, २६१)

मानसप्रेमी ने कहा–छंद और दोहे तो 'मानस' में हैं ही नहीं।

लोगों ने कहा–चौपाइयाँ भी कहती हैं कि जो शिव के धनुष को तोड़ देगा, उसी से सीता का विवाह होगा। जैसे,

सोइ पुरारि कोदंड कठोरा।
राज समाज आजु जोइ तोरा॥

त्रिभुवन जय समेत वैदेही।
बिनहि विचारि बरइ हठि तेही॥

मानसप्रेमी ने गर्व से कहा–यह चौपाइयाँ प्रक्षिप्त हैं।

इस दार्ष्टांत से ग्रंथकार ने समझाया कि जैसे 'मानस' के दोहों, सोरठों, श्लोंकों, छंदों को 'मानस' न मानकर 'मानस' की हत्या है, वैसे दयानंदजी द्वारा मान्य महाभाष्य के द्वारा कथित वेद की ११३१ शाखाओं, जिनमें ब्राह्मण, उपनिषदें, आरण्यक आ जाते हैं, इनको वेद न मानना वेद की हत्या है। इनके प्राचीन भाष्य-सम्मत अर्थ को असत्य मानकर अपने मनगढ़ंत अर्थ को प्रमाण मानना वेद की ही हत्या है। जैसे–

ऋग्वेद का एक मंत्र है–

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत।

(ऋग्वेद, १०/१०/१०)

इसका प्राचीन टीकाकारों ने अर्थ किया है कि यम और यमी भाई-बहन थे। भोली बहन ने भाई को ही अपने साथ विवाह करने के लिए कहा, तब भाई उत्तर देता है कि पुरुष और स्त्री का विवाह होता है किंतु वे दोनों भाई-बहन न हों।

हम दोनों भाई-बहन हैं, अतः (सुभगे) कल्याणी, तुम दूसरे पुरुष को वरो।

किंतु स्वामी दयानंदजी भाष्यों के अर्थ को प्रमाण न मान अपना मनमाना अर्थ करते हैं। सत्यार्थ प्रकाश में आया है– 'पति जब संतान उत्पन्न करने में असमर्थ हो तो वह पति अपनी पत्नी से कहता है कि, हे सुभगे! तुम मुझसे भिन्न अन्य पुरुष के पास जाकर मैथुन कराकर पुत्र उत्पन्न करा लो। इस तरह पति अपनी पत्नी को ग्यारह युवकों के पास भेज कर ग्यारह पुत्र उत्पन्न कर सकता है। ऋग्वेद ने कहा है–प्रतिमेकादशं...।'

यह है मनमाना अर्थ का मायाजाल!

किंतु हमारे दयानंद-पंथी भाइयों में से किसी भाई ने दयानंदजी के इस मनमाने अर्थ को आजतक नहीं माना। विचार कर इस अर्थ की उपेक्षा की। नहीं तो सौ वर्षों में आज हमारा सारा समाज ही दूषित हो जाता।

इसी आधार पर मैं आशा करता हूँ कि हमारे भाई विचारक हैं, वे उपर्युक्त पंक्तियों पर विचार कर सत्य और असत्य का निर्णय करें। इस तथ्य पर फिर गौर करें कि ब्रह्म समाज और आर्य समाज की स्थापना कर भाई को भाई के साथ उलझाने में लगाया गया या नहीं? भारत की सन्नारियों में पाश्चात्य नारियों के असदाचरण के लिए सिखाया गया या नहीं?

इस छोटे लेख में जो कुछ लिखा है, इसपर हमारे भाई गहराई से विचार करें, यह प्रार्थना है।

***